

‘लोक सम्बेदना के शिखर पुरुष—अनूप अशेष’

डॉ० बीरेन्द्र कुमार त्रिपाठी

ग्राम+पोस्ट—भैंसवार, जिला—सतना, मध्य—प्रदेश, भारत

सारांश

भारत देश के मध्य भाग में स्थित विंध्य क्षेत्र के सतना जिले के सोनौरा गाँव में जन्में श्री अनूप सिंह बघेल अशेष नवगीत कवि ऐसी शिखर का नाम है जो लोक जीवन की संवेदनाओं के सारथी हैं। उनकी कलम से प्रस्फुटित अर्थलय की अभिव्यक्ति के शब्द, मुहावरे और बिम्ब अपनी परम्परा के साथ नवता भी ग्रहण करते हैं। इसीलिए अनूप अशेष के नवगीत जो समय, स्थिति और संदर्भों की पहचान करते हुए गीत परम्परा में अपनी जमीन स्वयं तैयार किये हैं, उन्हें किसी मुहर या टप्पे की जरूरत नहीं पड़ती। वे किसी अखाड़े के पहलवान नहीं। उनकी स्वतंत्र चेतना ने ही उन्हें अनूप और अशेष बनाया है।

मूल शब्द: भारत, अखाड़े, पहलवान, बघेल अशेष, ए गाँव

प्रस्तावना

अनूप अशेष की रचना धर्मिता का सत्य चिरायु है। मनुष्य की संवेदना शीलता जिस सत्य पर आधारित होती है उसे हम तीन रूपों में मूल्यांकित कर सकते हैं। प्रथम तत्कालीन सत्य जो अल्पायु लेकर स्थिति है। दूसरे, समकालीन सत्य जो एक लम्बे समय तक युग धर्म के निकट निवास करता है। तीसरे, वह सर्वकालीन सत्य जो किसी भी काल—परिधि पर सीमित है। अनूप अशेष की साधना का यह परम लक्ष्य है। वे अपने नवगीतों को सर्वकालीन सत्य से जोड़ने का सतत प्रयास करते हैं। उनके कथ्य की अंतरंगता के बीज नवगीतों के अंकुरित और विकसित होते दिखाई देते हैं। उन्होंने गाँव, गली, गलियारे, बाग—बगीचे, बादल, बिजली, नदी, झील, पशु—पक्षी क्या कुछ नहीं देखा है। खेतों की मूड़ों पर बैठकर तोते—मैनों से बातें की हैं, अमराई की डालों पर बैठी कोयल से मिठास भरे गान सुने हैं, जंगल की हरियाली के बीच मोर के कामुक नृत्य के पंखों को थिरकन पर यौवन की मादकता का स्पर्श किया है, नदी—झरनों और पाव की बेंदों से स्ने का सुहाग रचा, चूल्हे के सूनेपन से अभव की पीडा और भूख का अनुभवन किया है। पनिहारिन के सूने पांव और अंसुआई आंखें से जीवन के सत्य को झरते हुए प्रवाह भी है। टूटी चारपाई पर बुढ़ापे की वेदना को हुक्के की निगाली से धुआँ—धुआँ होते हुए देखा भी है। यही नहीं, पछुआ के जोर से पराविर के वृक्ष की शाख—शाख को टूटते लचकते देखकर लू की लपट में सपनों के सुलते पातों की पीडा का अहसास भी किया है।

भारतीय संस्कृति और जीवन का खोजी कवि आज के नये परिवेश में शब्द—शब्द की गीत की संवेदन शीलता को किस सीमा तक खपा पायेगा और संस्कारों को खँगालकर उसकी वास्तविकता के साथ रचनाकर्म को कहाँ तक सीपना दे पायेगा, इसकी जीवन्तता और विराटता अनूप अशेष के नवगीतों की परिधि में देखा जा सकता है।

अभावग्रस्त जिंदगी की आंखों का पानी जब सूखने लगता है और पथराये मन की पीडा वर्फकी भौंति जगकर भाप बनने की आतुर होने लगती है तो यह देखकर अनूप अशेष की करुणा व्याकुल—तृप्त सन्नाटे को चीरकर पुकार उठती है। यथा

“सूँध गई रोटी की महक / भूख की चिरइया /
ओ बाबा। रस्सी में बाँधें न गइया। /
यह रस्सी भूखे मल्लाह ने बनाई / आँतों की ऐंठ पोर—पोर
उतर आई /
मूज सन अमारी का / रिश्ता पेट से हाथो की भाग्य—रेख रेत
ने मिटाई।
ओ बाबा। मुन्नी की गोद में। दुलार रही मइया।”

(संदर्भ क्रं—01—लौट आयेगें सगुन पंक्षी—पृ. क्रं—11—12)

इन दिन दुनिया की पीडा को आत्मसात कर वर्तमान व्यवस्था की टूटती दीवार को नया आकार देने के लिए अनूप अशेष जैसे नवगीतकारों के हथौड़े की चोट ही काम आ सकती है। नई इमारत बनाने न तो कोई नट का खेल है और न कोई चुनावी पोलाव। जन मानस को छगने वालों से चाहे जितने छल—छद्म किये हो किन्तु उन्हें अपने वृत्त पर गिरते ओलो की चिंता सिर फूटने पर ही होती है। सुबह की मुस्कान और संध्या की उदासी का अहसास उससे ही होती है जिसे धूप की चट्टाने पर पांव धरकर मटियारे घरों छपरौले दरवाजों के कहकहों से गुजरना पड़ता है बाँस के खरपच्चों से बने हुए जंगले, फटी भित्तियाँ, भूखे पेट का भूगाल और जले हुए चूल्हे की गंध, पोर—पोर चीरने वाली द्रुगंध की बीच एक अदद आदमी के असीमित सपनों के वृक्ष हवा के झाँकों में झूमते भी हैं और फलीभूत भी होते हैं मगर दाने—दों दाने। अशेष जी ने लिखा है—

“बाँस का टूटा हुआ जंगला / फटी भीती / बंधु।
हम यहीं रहते हैं /
यह घर / कि जैसे भूखे पेट का भूगोल /
खिचावों की लकीरे / जले चूल्हे / की पुरान गंध / मन को
कहाँ चीरे /
धूप में तपता हुआ पिंजडा / दाने बिना तीतल / बंधु।
हनको हर्मी सहते हैं।”

(संदर्भ कं-02-लौट आयेगें सगुन पंक्षी, पृ. कं-15-16)

मनुष्य की संवेदना के घोषलें से निकल गीत पक्षियों के स्वर-गान कहीं कमता नहीं होते । मनुष्य ने सदैव पर्वत से गाम्भीर्य, नदियों से गतिशीलता और संघर्ष, झरनों से गूँज भरा जीवन राग, पेड़ों से स्नेह और दानशीलता और पक्षियों से सपनों भरा अकाश, क्या कुछ नहीं पाया है उसने, हरी-भरी अनेक सम्पदाओं से भी प्रकृति से । उसने ही तो मनुष्य को भी देह यष्टि दी है, उसे सुंदर आकार दिया है । प्रेम, करुणा, ममता, दया, क्षमा, त्याग, अहिंसा-अनन्त सदगुणों और ऊर्जा का भण्डारण कर प्रदानकर प्रकृति ने चेतना से संधि की है । कवि की पारखी दृष्टि और उसका औदार्य इन गीतों में कहीं कमता नहीं । यथा -

“मैना री । काहे का दुःख तुझे काहे का रंज /
एक बार बोल मेरी मैना री / यह पिंजरा /
आनी जानी का / प्यास में कटोरा यह तूने चुना /
होना था मटमैला / रंग तेरे पानी का /
खोने का दुःख तुझे / चोंदी सा पानी का /
मुँह अपना खोल / मेरी मैना री ।”

(संदर्भ कं-03, लौट आयेगें सगुन पंक्षी, पृ.कं. 23-24)

मनुष्य तथा अन्य प्रजाति के जीवन में जो आत्मीय सम्बन्धों की नियति है और जो संवेदना एक वृत्त पर आकार सम हो जाती है, उससे उठा समत्व बोध हो हमारी कायिक मानसिकता को स्वस्थ घरातल प्रदान करता है । वह बसुधैव कुटुम्बकम की भावना को सार्थक भी करता है । हमारी सृजनशील मन इस आनी-जानी दुनिया में अपने अस्तित्व की तलाश भी करता है और इस पिंजड़े में कैद रहकर क्षणभंगुरता और जगत की असवारता से समझ भी विकसित करता है । यथा-

“किसनी बड़ी बाजार मैना री / हम तुम इस पिंजरे में /
पहली बार / मैना री / सोने की यह कैद / अंधेरे को /
आंगन-चौखट / ढूँढे कौन यहाँ / वस्ती में / जलते हुए
सवाल /
दिया जरे अधियार / रैना री । हम तुम इस पिंजरे में
/ पहली बार / मैना री ।

(संदर्भ कं-04, लौट आयेगें सगुन पंक्षी -अनूप अशेष पृ. कं. -25-26)

इस सांतमतवादी और पूंजीवादी व्यवस्था में आज का आदमी जिस उतार-चढ़ाव भरे बाजार में रहकर अपनी भाषा, संस्कृति और राष्ट्र की संवेदना को, अपनी आबादी को सुरक्षित रखने के लिए संघर्षरत है । इसी सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत जो रंग-बिरंगे बाजार में खुले आम बिक रही है, वह उसके लिए चुनौती है, विवशता को पराकाष्ठा भी है । वस्तु और व्यक्ति दोनों को समानधर्मी बिकाऊपन मन में खीझ और पराजय नहीं बोएगा तो और क्या । वह अपनी अस्मिता को बचाये रखने के लिए कितना बेताव है, ऐसी वेदना के स्तर अनूप अशेष के नवगीतों में राख में छुपी चिनगारी की तरह छू जाते हैं । अब तो घटित हुई घटनाओं के पीछे उनका इतिहास ही शेष है जो झूठ-फरेब की चार के नीचे सत्य को भी खोलता है । यथा-

“बह गये है / जो उफनती धार से / कुछ कह गये है /
अब नदी जल / शांत है / गम्भीर / बंधने के बाद /
ज्यों ऐंठी हुई / जंजीर / ढह गये है जो / नई दीवार से /
कुछ कह गये है ।”

(संदर्भ कं-5 लौट आयेगें सगुन पंछी-अनूप अशेष पृ.कं. -39-40)

इन स्थितियों ने रचे-बसे हम अपने हिमालियन व्यक्तित्व की तलाश में बांह सी कटी राहों पर फूल से गिरते दिनों की पीडा में डूबते-उतराते रहे । समय ने हमें सुपाडी की तरह कतरा और हम है कि उसके हाथों चुटहिल होने से बचते रहे । नियति ने हमारे कम्मै का एलबम बना डाला और वे संघर्ष के दिन आज भी स्मृति पटल पर अंकित है । यथा-

“बांह-सी कट गई राहें / फूलज से गिर गये दिन / बीनने
को कौडियों है /
सूघने को / गंध / मोड़ पर रह गये रिश्ते / पास में
/ हवा-सी घट गई छाहें /
आँख से / चिर गये दिन । धूल का कुह जोहना है / शाम
के / धोखे /
नाम के आखिरी अक्षर / रह गये / होके / डाक-सी बँट
गई चाहें /
पीठ से / फिर गये दिन ।”

(संदर्भ कं-06, लौट आयेगें सगुन पंक्षी-अनूप अशेष पृ. कं. -31-32)

इसी तरह तत्कालीन गाँव की जटिल परिस्थितियों और मनोदशाओं के शूक्ष्म दर्शन कराने में अशेष कहीं पीछे नहीं है । अभाव, टूटन, जातीय-उन्माद, आर्थिक दुदशा और समता एवं सहायोग के नाम पर ठगी और भेद-दृष्टि से बचना जन-जन के लिये मुश्किल अवश्यक है । आजाद भारत की दयनीय दशा का दृश्य देखना होता गाँव की ओर खें । आगंतुम अतिथियों को हमारी सरकारें शहर की चौडी सडकों व हाईवे पर उतारकर प्राकृतिक सौंदर्य, ऐतिहासिक, मीनारे-महल और शहराती-योजनाओं और समुद्रीय परिदृश्य दिखकर भारत की बनावटी षक्ल दिखाई जाती है जो गाँव की बड़ी आबादी की वास्तविका से कोंसों दूर है । जिस गाँव के बारे में कवि की लेखनी यह कहते नहीं रुकती है ।

लोक-संस्कृति और गाँव से जुड़े रचनाकार की गीत माधुरी मन के मर्म को छूकर ही कुछ नया रचती है । उसके पोर-पोर में गौव बसता है ।

दादी का प्यार, घूँघट की प्रेम-रस गागरी, पडोसी की सुलगन, फूलों, नदियों, कुओं-तालावों का माध्यम सांस्कृतिक परिवेश और उस परिवेश में डूबा संत्रास, घुटन और विघटन जो भी गाँव के पास है ।

शुभ या अशुभ उसका यथार्थ अपेक्ष के गीतों की सम्पदा है । गाँव के तिथि त्योहार -महोत्सव, शादी-व्याह, होली-दीवाली-दशरहा जो भी है उसमें कभी एक उमंग था, उत्साह था, अपनापन था । लोगों में इन त्योहारों की इन्तजारी थी । छूटे मन और अनसवने चूल्हें रि आपस में जुड जाते थें, मान-मनोव्यल हो जाती थी । ये सब भारतीय संस्कृति और जीवन-दशन के प्रकाष स्तम्भ थें । अनेक जाति-धर्म के लोग एक दूसरे के त्योहार में सम्मिलित होकर भाई चारे का आनन्द लेते थें । तब आज का जैसा माहौल न था । न तो ऐसा वैमनस्य था और न ही दंगा तथा आतंक था । बुजुर्गों की समझ और चातुरी से पूरा गाँव मजा करता था किन्तु समय ने करवट ली तो षहरी भाई ने धन कमाने के लाभ में षहर आने की इच्छा रखने वाले भाई को पत्र लिखा -

“घर की किल्लत भूख बिमारी / हँसकर सह जाना /
भैया । शहर नहीं आना / गाँव हमारा / अम्मा-बाबू
की आषीषों का / हँसी-टिठौली / पीहर-सासुर / चेहरों
शीषों का / शील-परम सब यहाँ बिकाऊ / बंबईया

अफसाना /

भैया । शहर नहीं आना ।”

(संदर्भ कं-07—लौट आयेगें सगुन पंक्षी—अनूप अशेष, पृ.कं.—102)

शहर के देहात से गहरे रिश्ते हैं । शहर का बाजारूपन कही मनुष्य को मनुष्य होने से दूर ले जाता है । रोटी—रोजी की अपाधापी में जूझ रहा आदमी जीवन के रागात्मक स्वर लगभग खो चुका है इसलिए वह प्रेमिल रिश्तों को भी शारीरिक खुराक बनाकर जी रहा है । वह मुसकान, वह लय और खनक जो उसके जीवन में थी, न जाने कहाँ खो गई । उसका पूरा परिवेश ही यंत्रवत भौतिक उपलब्धियों बटोरने में चुक गया है । होंठों में प्रस्फुरित शब्दों की कोमलता और मधुरता जैसे, श्रम की आँच पाकर गायब हो गई ।

अनूप अशेष की साधना के स्वर उनके नवगीतों में बँधी बंधाई छंद की पाँत से उन्हें अलग करती है । वे अपने अंतर्तर्हों में उतर कर अपने अनुभव की आँच में जिस सामाजिक सच को खँगालना चाहते हैं । टर उस अस्पृशित यथार्थ की गइराई में सामाजिक विसंगतियों और विद्वेषताओं का दामन पकडकर चहुँमुखी आँखों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं वह मामूली काम नहीं है । यही वजह है उनके नवगीत जिस अंतर्मुखता को तोड़ने की कोशिश में है वह गॉव के गलियारों से वैश्विक सडक तक की कोसों की आत्रा है । वे स्वयं लिखते हैं ।— “भूमण्डलीय और बाजारवाद के कारण मानवीय संवेदना सूख रही है , हम विश्व की महाशक्तियों में खडे तो हो गये पर हमारी अपनी पूरब की अस्मिता खोती जा रही है । हमारा देशीपन, हमारा जीवन लोक इस विद्रूपता का पाप ढोने की विवशता ढो रहा है ।” जब लोक संवेदना घर की दीवार की सीमा लॉधकर मकान की फर्श पर उतरती है तो भी उसे विकृतियों कचोटती है अतीत के गलियारों और अँगनई से बाजारें झाँकने वाली बुजुगों की आँखों के कबूतर बोल उठते हैं । यथा—

“इस मकान में / हम कंदील से / भीतर बाबा / बाहर चन्द्रमा /
रिश्ते में / श्वास में दमा / बैठे हैं पीपल की चील से ।”

संघर्षशील जीवन की अनेक दुर्दशाओं को झेलता हुआ मन अपने—अपने वृत्तों में सांस लेकर जब संकीर्णताओं की झोली बुनने लगता है तब उसके एक—एक धागे से उधरी चित्रावलियों उसकी वृत्तियों को उधेडकर स्पष्ट कर देती है । कहीं न कहीं अनूप अशेष की लेखनी उस सच्चाई को सामने रखकर देती है । भौतिक विकास की अंधी दौड में आज का आदमी वैश्विक धरातल छूने की शर्त लगा बैठा है । भाषा संस्कृति और धर्म के बिना मनुष्य की चेतना के रंग बँवाक और बेसुध होकर बहे चले जा रहे हैं ।—सात समुंदर पार जहाँ स्नेह आत्मोत्सर्ग को पतंगों के धागे टूट चुके हैं और रिश्तों ने शरीर के तल पर ही नृत्य पूरी तरह से वाकिफ हो चुके हैं । उन्होंने उस पथराये लोक की सच्ची संवेदना को आहुति होते हुए देखा । —

‘कौन रहने आयेगा / पत्थर के / इस सदी के नींव में /
मिट्टी नहीं / पानी नहीं है / जिंदगी की महक में /
परिवार की छानी नहीं / हाथ में कीचड नहीं / इस
वैश्विक घर में / उमस की छत और / लोहे की /
हवा है / खिडकियों की सांस में / दिन का तवा है /
इस नये आकाश की / सीमा / उडे पर में ।”

(संदर्भ कं-08, सहयात्री समय के. पृ.कं. 390—399)

इस सच्चाई और वेदना में जीकर भी आम आदमी भी पिस रहा है और उसकी दृष्टि का पारखी कवि उसे शब्द—षब्द उकरने को

सामर्थ्य रखता है ।

आज का साहित्य नितांत बजारु होता जा रहा है । मनुष्य अपने नियंत्रण से बाहर है । उसके घर के भीतर बाजारवाद के स्वर गूँज रहे हैं । चिंता का विषय यह ही नहीं है कि साहित्य का उत्पादन यंत्रवत तो नहीं है परन्तु वह जीवन—मूल्यों के स्थायी भाव खडे करने में नाकामियाब है, बल्कि समय शुष्कता तथा बौद्धिकता के दबाब में अनर्गल प्रलाप करने लगा है ।

जो साहित्य या कविता जीवन राग, लय में छांदसिकता का अनुगामी था वह समय को रेखांकित करते हुए युग के नंगेपन का अनुयायी होता जा रहा है । अनूप अशेष अपने रागात्मक मन के साथ ही अपनी चित्तवृत्तियों को नियंत्रित कर मानवता के उत्थान और सृजन के पक्षधर है । उनके गीत परिस्थितियों के दबाब औ संवेगों के ही नहीं, राग—रंग व प्रकृति—लावण्य के भी हैं । उनके खैखट के भीतर जो भी ज्वार—भाटे आते हैं या फिर तरंगें अपने पोर—पोर छूकर नयी उमंगें एवं उत्स लेकर ग्रीडा करती हैं । कुछ उद्विग्न करती हैं जो कुछ चौकाती भी हैं । उन्हीं श्रोतो के मध्य से अंकुरित गीत यथार्थ के अनुगायक हैं ।

संदर्भ ग्रंथ

1. संदर्भ कं01 —लौट आयेगें सगुन पंक्षी—अनूप अशेष पृ. कं—11—12
2. संदर्भ कं02 —लौट आयेगें सगुन पंक्षी—अनूप अशेष पृ. कं—15—16
3. संदर्भ कं03 —लौट आयेगें सगुन पंक्षी—अनूप अशेष पृ. कं—23—24
4. संदर्भ कं04 —लौट आयेगें सगुन पंक्षी—अनूप अशेष पृ. कं—25—26
5. संदर्भ कं05 —लौट आयेगें सगुन पंक्षी—अनूप अशेष पृ. कं—39—40
6. संदर्भ कं06 —लौट आयेगें सगुन पंक्षी—अनूप अशेष पृ. कं—31—32
7. संदर्भ कं07 —लौट आयेगें सगुन पंक्षी—अनूप अशेष पृ. कं—102